श्रीमती के. विजया लक्ष्मी

बनाम

आंध्र प्रदेश सरकार, प्रतिनिधित्व जरिये सचिव गृह विभाग (न्यायालय सी 1) द्वारा और अन्य

(वर्ष 2013 की सिविल अपील संख्या 1389)

18 फ़रवरी 2013

[ए. के. पटनायक और एच.एल.गोखले, न्याया.]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 234-सिविल न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति से इनकार- उम्मीदवार और उसके पति का प्रतिबंधित राजनीतिक दल से संबंध के आरोप की पुलिस रिपोर्ट के आधार पर-पुलिस जांच से संबंधित सभी सुसंगत दस्तावेज राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय को प्रशासनिक स्तर पर प्रस्तुत नहीं किये गये-राज्य द्वारा स्वयं यह निर्णय लिया गया कि प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट के दृष्टिगत उसकी उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया

जा सकता-अभिनिर्धारित: चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष प्रशासनिक स्तर पर सभी दस्तावेज प्रस्तुत नही किये जाने से यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय के साथ अनुच्छेद 234 के तहत आवश्यक सार्थक परामर्श किया गया-उच्च न्यायालय प्रशासन अनुच्छेद 234 के तहत अपना कार्य सम्पूर्ण करने में विफल रहा।

-राज्य सरकार को यह निर्देश दिये गये कि पुलिस रिपोर्ट को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रशासनिक स्तर पर प्रस्तुत किया जाए।

अनुच्छेद 22 (1)-सिविल न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति-उम्मीदवार के पति (एक वकील) के प्रतिबंधित राजनीतिक दल के साथ संबंध होने का आरोप लगाने वाली पुलिस रिपोर्ट का आधार पर अस्वीकार किया गया-उम्मीदवार का तर्क है कि उसका पति ऐसी पार्टी से संबंधित कुछ वादियों की ओर से अधिवक्ता के रूप में पेश हुआ होगा-अभिनिर्धारित: उम्मीदवार को उसके पति की भूमिका जो वकील के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन वादी को अनुच्छेद 22 (1) के तहत प्रदत्त मौलिक अधिकारों के लिए कर रहे थे-बार काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार भी, एक वकील ब्रीफ स्वीकार करने के लिए बाध्य है तथा वकील का यह कर्तव्य है कि वह अपने मुवक्किल के हितों की पैरवी करेगा-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 22 (1)-अधिवक्ता अधिनियम, 1961-एस.49 -बार काउंसिल ऑफ इंडिया नियम-और और . 11 और 15-न्यायिक सेवा।

न्यायिक पुर्नविलोकन-सिविल न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में-अनुज्ञेय- अभिनिर्धारितः ऐसे मामले में न्यायिक पुर्नविलोकन अनुज्ञेय है, यदि अनुच्छेद 234 या न्यायिक सेवा नियमों से कोई उल्लंघन या अतिलंघन है- भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226 और 234-न्यायिक सेवा।

अपीलकर्ता जो एक प्रैक्टिसिंग वकील थी, ने (कनिष्ठ) सिविल न्यायाधीश के पद की भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया। उसे इस पद के लिए चुना गया था और उसका नाम मेरिट सूची में दर्शित था। लेकिन उसको इस आधार पर नियुक्ति नहीं दी गई कि उसका पति एक प्रेक्टिसिंग वकील के सीपीआई (माओवादी) पार्टी के साथ घनिष्ठ संबंध थे जो कि एक प्रतिबंधित संगठन था।

अपीलकर्ता ने कनिष्ठ सिविल न्यायाधीशों की सूची में अपना नाम शामिल न किया जाने को अवैधानिक मनमाना और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन बताते हुए रिट याचिका दायर की गई तथा उसने नियुक्ति आदेश जारी करने के लिए परमादेश की मांग की गई। याचिका का विरोध करते हुए राज्य सरकार ने आरोप लगाया कि अपीलकर्ता के भी सीपीआई माओवादी पार्टी से करीबी संपर्क थे। उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने यह कहते हुए रिट याचिका खारिज कर दी कि जब नियुक्ति प्राधिकारी अर्थात् राज्य सरकार द्वारा संबंधित उम्मीदवार की न्यायिक पद के लिए नियुक्ति करना उचित नहीं पाया, उच्च न्यायालय से हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं की

गई थी और ऐसे मामलों में जहाँ राज्य विशेषाधिकार की शक्तियों का प्रयोग कर रहा था, न्यायिक पुर्नविलोकन उपलब्ध नहीं था। इस न्यायालय में अपील में एक पुलिस रिपोर्ट पेश की गई थी जिससे यह आक्षेप लगाया गया कि अपीलकर्ता सीपीआई (माओवादी) पार्टी से सहानुभूति रखती था और चैतन्य महिला समाख्या (सीएमएस)

जो सीपीआई (माओवादी) का अग्रणी संगठन है, की सदस्य थी।

न्यायालय ने अपील का निस्तारण करते अभिनिर्धारित किया

उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत जिम्मेदारी का निर्वहन करने में प्रशासनिक स्तर पर और फिर अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका को खारिज करने में न्यायिक स्तर पर त्रुटि कारित की गई। प्रथमदृष्ट्या रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह अनुमान लगाना कठिन है कि अपीलकर्ता का किसी प्रतिबंधित संगठन के साथ संपर्क/संबद्धता थी खण्डपीठ का निष्कर्ष उक्त आधार पर इसीलिए कायम नहीं रखा जा सकता। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है कि यह सीएमएस एक प्रतिबंधित संगठन है या अपीलकर्ता इसका सदस्य है। यह भी रिकॉर्ड में नहीं रखा गया है कि उसने किस तरह से उनकी किसी गतिविधि में भाग लिया था, और किस कार्यक्रम के माध्यम से उसने मार्कापुरम क्षेत्र में सीएमएस की गतिविधियों को तेज करने की कोशिश की थी, जैसा कि ऊपर उद्धृत रिपोर्ट के पैराग्राफ 5 में दावा किया

गया है। यह स्वीकार करते हुए कि उनके पति सीपीआई (माओवादी) के कुछ कार्यकर्ताओं के लिए जमानत लेने के लिए पेश हुए होंगे, अपीलकर्ता ने आरोप लगाया है कि उनके पति आपराधिक मामलों में पुलिस का विरोध करने के कारण पुलिस उन्हें फंसाने की कोशिश कर रही है। [पैरा 27 और 29][390-ए-एच; 391-ए-बी; 392-सी-डी]

2.केवल उम्मीदवार की राजनीतिक संबंध की पुलिस रिपोर्ट के आधार पर किसी उम्मीदवार को सार्वजनिक रोजगार से वंचित करना, संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा, जब तक कि ऐसे संबंध उम्मीदवार की निष्ठा और दक्षता को प्रभावित करने वाली नहीं मानी जाती हैं, या (हम जोड़ सकते हैं) जब तक कि किसी प्रतिबंधित संगठन की विध्वंसक या हिंसक गतिविधियों में उम्मीदवार की संलिप्तता का संकेत देने वाली स्पष्ट सामग्री न हो। वर्तमान मामले में यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है कि अपीलार्थी किसी विध्वंसक या हिंसक गतिविधियों में शामिल रहा है। अपीलकर्ता ने सीपीआई (माओवादी) पार्टी या सीएमएस के साथ अपने कथित संबंध से इनकार किया है। प्रतिवादी नंबर 1 ने स्वीकार किया है कि इस बात का कोई दस्तावेजी सबूत नहीं है कि सीएमएस सीपीआई (माओवादी) का फ्रंटल संगठन है। और जहां तक उसके सीपीआई (माओवादी) से संबंध का प्रश्न

है, पुलिस की रिपोर्ट के अलावा कोई सामग्री नहीं है, जिसकी प्रमाणिकता को अपीलार्थी द्वारा विवादित किया गया है। [पैरा 25] [389-बी-ई]

स्टेट ऑफ मध्यप्रदेश बनाम रामाशंकर रघुवंशी **एआईऔर 1983 एससी 374: 1983 (2) एससीऔर 393 पर निर्भर किया।**

3.जो लोग राजनीति में भाग ले रहे हैं और सत्ता में बैठे लोगों के विरोधी हैं, उन्हें अक्सर शासकों के क्रोध का शिकार होना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप कभी-कभी अनुचित गिरफ्तारी या हिरासत हो सकती है। लोकतंत्र का गुण प्रत्येक गिरफ्तार या हिरासत में लिए गए व्यक्ति के अपनी पसंद के विधि व्यवसायी द्वारा बचाव के अधिकार को मान्यता देने में निहित है। संविधान का अनुच्छेद 22 (1) विशेष रूप से बताता है कि किसी भी व्यक्ति को परामर्श के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा और उसकी पसंद के विधि व्यवसायी द्वारा बचाव किया जाना, मौलिक अधिकार के रूप में है। ऐसे सभी आरोपियों को तब तक कानूनी रूप से बचाव करने का अधिकार है जब तक कि वे दोषी साबित न हो जाएं, और अधिवक्ताओं का कानून के अनुसार उनका प्रतिनिधित्व करने का कर्तव्य है। वर्तमान मामले के तथ्यों में कोई भी विपरीत दृष्टिकोण अपनाने से अपीलकर्ता को अपने पति की भूमिका के लिए पीड़ित होना पड़ेगा जो गिरफ्तार व्यक्तियों के इस मौलिक अधिकार को आगे बढ़ाने में एक वकील के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा है। बार काउंसिल ऑफ इंडिया

द्वारा बनाये गये नियमों में नियम 11 और 15 में यह बताया गया है कि "एक वकील ब्रीफ स्वीकार करने के लिए बाध्य है" और एक वकील का यह कर्तव्य होगा कि वह अप्रिय परिणाम की परवाह किए बिना अपने मुवक्किल के हितों की निडर होकर पैरवी करेगा। [पैरा 19 और 20] [382-एफ-जी; 383-बी-सी, एफ-एच; 384-बी]

ए.एस. मोहम्मद रफी बनाम तमिलनाडु राज्य **2011 (1) एससीसी 688: 2010 (14) एस. सी. और . 792-पर आधारित/पर विश्वास किया।**

4.1. अनुच्छेद 234 में न्यायिक सेवा में भर्ती के मामले में उच्च न्यायालय के साथ सार्थक परामर्श की आवश्यकता है। अनुच्छेद 234 के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए , उच्च न्यायालय को प्रशासनिक दृष्टि में एक उम्मीदवार की उपयुक्तता पर निर्णय लेना है, और यह केवल पुलिस रिपोर्टों पर निर्भर नहीं हो सकता है, हालांकि ऐसी रिपोर्टें, निश्चित रूप से, इसके विचार का एक प्रासंगिक हिस्सा बनेंगी। [पैरा 25] [388-एच; 389-ए-बी]

4.2. वर्तमान मामले में यह रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया है कि ऐसे सभी कागजात प्रशासनिक पक्ष से उच्च न्यायालय को उसके निर्णय को सुविधाजनक बनाने के लिए भेज दिए गए थे। दूसरी ओर सरकार ने स्वयं निर्णय लिया था कि प्रतिकूल रिपोर्टों के मद्देनजर अपीलकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा

सकता कि अपीलकर्ता को नियुक्त न करने के निर्णय पर पहुंचने से पहले उच्च न्यायालय के साथ सार्थक परामर्श किया गया है। अनुच्छेद 234 विशेष रूप से आवश्यक है कि ये नियुक्तियाँ राज्य लोक सेवा आयोग और संबंधित राज्य में अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद की जाएं। उच्च न्यायालय प्रतिकूल रिपोर्ट को स्वीकार भी कर सकता है और नहीं भी। अंततः, जहां तक चयन न्यायिक पद पर नियुक्ति के लिए है, राज्यपाल को उच्च न्यायालय की राय से निर्देशित होना होगा। वर्तमान मामले में, जैसा कि रिट याचिका के जवाब में रजिस्ट्रार-जनरल के हलफनामे से पता चलता है, गृह विभाग के पत्र के मद्देनजर, उच्च न्यायालय ने अपने हाथ खड़े कर दिए हैं, और उससे कोई और जानकारी नहीं मांगी है। प्रथम प्रत्यर्थी अनुच्छेद 234 के तहत यह सरकार का कर्तव्य है कि वह ऐसी रिपोर्टों को उच्च न्यायालय को अग्रेषित करे, और फिर उच्च न्यायालय को अपनी राय बनानी है, जिसके परिणामस्वरूप संबंधित उम्मीदवार को नियुक्त करने या न करने का परिणामी निर्णय होगा। इस अनुच्छेद के तहत सार्थक परामर्श के लिए ऐसी प्रक्रिया आवश्यक है। किसी भी अन्य दृष्टिकोण का मतलब यह होगा कि पुलिस द्वारा जो भी कहा गया है वह अंतिम होगा, प्रशासनिक पक्ष में उच्च न्यायालय द्वारा उस पर विचार किए बिना। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने अपने हाथ खडे कर दिये तथा राज्य सरकार से और कोई सूचना नहीं चाही गई। चूंकि रिपोर्ट न तो उच्च न्यायालय को सौंपी गई

और न ही मांगी गई, इसलिए उच्च न्यायालय प्रशासन द्वारा उस पर कोई विचार नहीं किया गया है। इस प्रकार, सरकार के पास जो सामग्री उपलब्ध थी, उस पर उच्च न्यायालय के साथ कोई सार्थक परामर्श नहीं हुआ है। इस प्रकार उच्च न्यायालय प्रशासन संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने में विफल रहा है। [पैरा 22 और 25] [386-ए-एफ; 389-ई-एफ]

5.उच्च न्यायालय ने यह मानने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है कि सिविल जज की नियुक्ति से संबंधित निर्णय की न्यायिक समीक्षा की अनुमति नहीं थी क्योंकि वह पद एक संवेदनशील पद था। सिविल जज के पद पर नियुक्ति अनुच्छेद 234 और राज्य न्यायिक सेवा नियमों के तहत आती है, और यदि इसका कोई उल्लंघन या विचलन होता है, तो ऐसे निर्णय की न्यायिक समीक्षा निश्चित रूप से हो सकती है। [पैरा 26] [390-सी-ई]

भारत संघ बनाम काली दास बातिश **2006 (1) एस.सी.सी. 779:**

2006 (1) एससीऔर 261-अन्तर किया गया।

के. अशोक रेड्डी बनाम भारत सरकार **1994 (2) एस.सी.सी. 303:**

1994 (1) एस. सी. और . 662-अनुपयुक्त ठहराया गया।

सिविल सेवा परिषद संघ बनाम नागरिक सेवा मंत्री

सेवा 1984 (3) ए. आई. आई. ई. और . 935-संदर्भित ।

6.अदालत अपीलकर्ता द्वारा उसके पक्ष में नियुक्ति आदेश जारी करने के लिए मांगे गए परमादेश को मंजूर नहीं कर सकती। चयन के संबंध में अंतिम निर्णय उचित प्राधिकारी पर छोड़ा जाना है। वर्तमान मामले में खण्डपीठ को राज्य सरकार को निर्देश देना चाहिए कि प्रशासनिक पक्ष की ओर से सभी पुलिस कागजातों को उच्च न्यायालय के समक्ष रखे, ताकि उस पर उचित विचार-विमर्श के बाद उचित निर्णय लिया जा सके। तदनुसार, राज्य सरकार को प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय के विचार के लिए पुलिस रिपोर्ट (खण्डपीठ के समक्ष प्रस्तुत) रखने का निर्देश दिया जाता है। [पैरा 29 और 30] [392-डी-एच]

हरपाल सिंह चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **1993 (3) एस.सी.सी. 552: 1993 (3) एस.सी.और . 969-पर निर्भर ।**

लर्नर वी। केसी **(1958) 357 यू. एस. 468;** स्पीज़र बनाम रैंडल

(1958) 357 यूएस 513; शंकरसन दास बनाम भारत संघ

1991 (3) एससीसी 47: 1991 (2) एससीऔर 567; बिहार राज्य बनाम बालमुकुंद शाह **एयर 2000 एससी 1296: 2000 (2) एससीऔर 299;**

सुप्रीम कोर्ट ए.ओ.और . एसोसिएशन बनाम भारत संघ **(1993)**

4 एससीसी 441: 1993 (2) पूरक। एस. सी. और . 659-संदर्भित।

संदर्भित निर्णय विधि :

(1) एससीऔर 662	अनुपयुक्त ठहराया गया	पैरा 9,26
2006(1)एससीऔर 261	अन्तर किया गया।	पैरा 9,15,16, 22, 29
1983 (2) एससीऔर 393	पर निर्भर	पैरा 13,25
(1958) 357 यूएस 468	संदर्भित किया गया है	पैरा 14
(1958) 357 यूएस 513	संदर्भित किया गया है	पैरा 14
1991 (2) एससीऔर 567	संदर्भित किया गया है	पैरा 17
2010 (14) एससीऔर 792	पर निर्भर ।	पैरा 20
1975 (1) एससीऔर 814	अनुसरण किया।	पैरा 23
2000 (2) एससीऔर 299	संदर्भित किया गया है	पैरा 24
1984 (3) सभी ईऔर 935	संदर्भित किया गया है	पैरा 26
1993 (2) पूरक। एससीऔर 659	संदर्भित किया गया है	पैरा 26

1993 (3) एससीऔर 969 संदर्भित किया गया है पैरा 29

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील सं0 1389/2013

आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद की रिट याचिका सं. 2008 की 26147 के निर्णय और आदेश दिनांकित 19.03.2009 से रंजीत कुमार, और . वेंकटरमणि, जी.वी.और . चौधरी, के.शिवराज चौधरी, ए.चन्द्र शेखर, जी.एन.रेड्डी,एम.रामबाबू, एस नागराजन, रंजन कुमार, अल्जो जोसेफ, नीलम सिंह, सुप्रिया गर्ग, शोधन बाबू, मुनव्वर नसीम,टी.वी. रत्नम, जी.एन.रेड्डी उपस्थित पक्षों के लिए ।

न्यायालय का निर्णय **एच.एल.गोखले न्याया.** द्वारा सुनाया गया।

1.अनुमति प्रदान की गयी।

2. इस अपील द्वारा आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा 2008 की रिट याचिका संख्या 26147 में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 19.03.2009 को चुनौती देना चाही गयी है। उस आदेश द्वारा आंध्र प्रदेश में सिविल न्यायाधीश के पद पर उसकी नियुक्ति न किये जाने पर विवाद करने वाली अपीलकर्ता की उक्त रिट याचिका खारिज करने का मामला सामने आया है।

<u>इस अपील के प्रमुख तथ्य</u>

3. यहां अपीलकर्ता एक वकील है जो आंध्र प्रदेश राज्य के मार्कपुर, जिला प्रकाशम के न्यायालयों में वकालत करता है। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय (यहां प्रतिवादी नंबर 2) ने अपनी अधिसूचना संख्या 1/2007-और सी दिनांक 14.5.2007 द्वारा (कनिष्ठ) सिविल न्यायाधीशों के 105 पदों (सीधी भर्ती द्वारा 84 पदों सहित) पर नियुक्तियों के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे। (उस उद्देश्य के लिए) उसके 28.10.2007 को एक लिखित परीक्षा आयोजित की गई थी, और जो लोग उसमें उत्तीर्ण हुए, उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। साक्षात्कार के बाद, सीधी भर्ती (और स्थानांतरण द्वारा 17) में से लगभग 81 उम्मीदवारों का चयन उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा किया गया था, और इस चयन को (पूर्णपीठ) प्रशासनिक पक्ष में पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था। अपीलकर्ता उन लोगों में से एक थी जिनका चयन किया गया था, और उसका नाम सामान्य श्रेणी से चयनित उम्मीदवारों की सूची में क्रम संख्या 26 पर था।

4. हालाँकि, ऐसा हुआ कि जबकि अन्य चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी किए गए, अपीलकर्ता को नहीं किया गया। इसलिए, उसने अपनी गैर-नियुक्ति का कारण जानने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के तहत 3.11.2008 को आवेदन किया।

उन्हें प्रतिवादी संख्या 1 से दिनांक 11.11.2008 को एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें निम्नलिखित कारण दिए गए थे:

"मुझे आपका ध्यान दूसरे उद्धृत संदर्भ की ओर आकर्षित करने और आपको सूचित करने के लिए निर्देशित किया गया है कि, सत्यापन रिपोर्ट में प्रतिकूल टिप्पणियां की गई थीं, कि आपके पति श्री श्रीनिवास चौधरी, जो मार्कपुर में न्यायालयों में एक वकील के रूप में अभ्यास कर रहे हैं, उनके सीपीआई (माओवादी) पार्टी से करीबी संबंध है जो एक प्रतिबंधित संगठन है।"

5. अपीलकर्ता अपनी नियुक्ति न होने का उपरोक्त कारण जानकर हैरान रह गई। हालाँकि उस पत्र में उनके खिलाफ कुछ भी नहीं कहा गया था, लेकिन उनके अनुसार उनके पति के खिलाफ जो कहा गया था वह भी झूठ था। इसलिए, उन्होंने आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय में 2008 की संख्या 26147 की एक रिट याचिका दायर की, और प्रार्थना की कि कनिष्ठ सिविल न्यायाधीशों की सूची में उनका नाम शामिल न होने की घोषणा करने के लिए एक परमादेश जारी किया जाए। 23.10.2008 को जारी किया गया मामला अवैध, मनमाना और भारत के संविधान (संक्षेप में संविधान) के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था, और परिणामस्वरूप प्रत्यर्थियों को तुरंत नियुक्ति का आदेश जारी करने का निर्देश जारी किया जाना चाहिए।

6.उत्तरदाताओं ने जवाब में अपने हलफनामे दाखिल करके मामले का विरोध किया। इस बार प्रतिवादी नंबर 1 ने आरोप लगाया कि अपीलकर्ता का भी सीपीआई (माओवादी) पार्टी के साथ घनिष्ठ संबंध था। प्रत्यर्थी नंबर 1 के हलफनामे के पैराग्राफ 4 और 5 इस प्रकार बताए गए हैं: -

"आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पुलिस अधीक्षक ने रिपोर्ट दी है कि करनम विजया लक्ष्मी पुत्री के. बालागुरवैया, मंगली मन्यम, मरकापुर, प्रकाशम जिला, जिसे कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश के रूप में चुना गया है, के चरित्र और पूर्ववृत्त के पुनः सत्यापन से पता चलता है कि हाल ही में सीपीआई (माओवादी) के आंदोलनों के संबंध में एकत्रित गोपनीय आंतरिक खुफिया जानकारी से पता चला कि श्रीमती के. विजया लक्ष्मी (चयनित सूची में क्रम संख्या 26) पुत्री के.बालागुरवैया निवासी मंगली मान्यम, मरकापुर जिन्हें कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश के पद के लिए चुना गया है और उनके पति श्रीनिवास चौधरी पुत्र संबासिवा राव मरकापुर की अदालतों में वकील के रूप में के प्रैक्टिस करने वाले इन लोगों का सीपीआई (माओवादी) पार्टी के साथ घनिष्ठ संबंध है, और सीपीआई (माओवादी) जो एक प्रतिबंधित संगठन है पार्टी के यूजी कैडर के संपर्क में भी हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सीपीआई (माओवादी) सरकार द्वारा प्रतिबंधित संगठन है और उम्मीदवार के रूप में श्रीमती। के.

विजया लक्ष्मी क्रमांक. चयनित सूची में क्रमांक 26 पुत्री के.

बालगुरवैया निवासी मंगली मान्यम, मरकापुर और उनके पति श्रीनिवास चौधरी पुत्र संबासिवा राव, जो मरकापुर की अदालतों में एक वकील के रूप में प्रैक्टिस कर रहे हैं, के सीपीआई (माओवादी) पार्टी के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। जो एक प्रतिबंधित संगठन है और सीपीआई (माओवादी) पार्टी के यूजी कैडर के संपर्क में है, सरकार को प्रतीत होता है कि उन्हें जूनियर सिविल जज के पद पर नियुक्ति की अनुशंषा नहीं की जानी चाहिए।"

7. अपीलकर्ता ने 8.2.2009 को एक प्रत्युत्तर दायर किया, और सभी आरोपों को झूठा और गलत बताया।

8. प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया था। इस हलफनामे के पैरा 4 में यह कहा गया था कि अपीलकर्ता को अन्य उम्मीदवारों के साथ सिविल जज के पद पर नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अस्थायी रूप से चुना गया था। पूर्ववृत्त के सत्यापन जैसी औपचारिकताओं का विधिवत पालन करने के बाद, चयन सूची को मंजूरी देने के आदेश जारी करने के लिए 98 चयनित उम्मीदवारों की एक अनंतिम सूची प्रत्यर्थी संख्या 1ए आन्ध्र प्रदेश सरकार को भेजी गई थी। इस प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा, अपने जीओएम के 164 गृह (सीटीएस सी1) विभाग दिनांक 23.10.2008 के माध्यम से इसके बाद 94 उम्मीदवारों के चयन को मंजूरी देते हुए आदेश जारी किया। हालाँकि, जहाँ तक अपीलकर्ता का सवाल है, हलफनामे

में कहा गया है कि पहले प्रत्यर्थी ने अपने ज्ञापन दिनांक 8.5.2008 के माध्यम से प्रकाशम जिले के पुलिस अधीक्षक से अपीलकर्ता और अन्य उम्मीदवारों के चरित्र और पूर्ववृत्त को सत्यापित करने का अनुरोध किया था। इसके बाद, हलफनामे में कहा गया:-

"...प्रथम प्रत्यर्थी ने दिनांक 25.10.2008 के पत्र के माध्यम से उच्च न्यायालय को सूचित किया कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके पूर्ववृत्त सत्यापन रिपोर्ट में बताया गया था कि उसके प्रतिबंधित संगठन के साथ संबंध थे।

यह सादर प्रस्तुत किया गया है कि इस प्रत्यर्थी की इस मामले में कोई भूमिका नहीं है क्योंकि प्रथम प्रत्यर्थी, सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी है। इसलिए इस प्रत्यर्थी के खिलाफ किसी राहत का दावा नहीं किया जा सकता है।"

इस प्रकार, जैसा कि देखा जा सकता है, उच्च न्यायालय प्रशासन को एक पत्र के माध्यम से सूचित किया गया था कि अपीलार्थी का एक प्रतिबंधित संगठन के साथ संबंध था, लेकिन हलफनामे में यह नहीं बताया गया है कि उच्च न्यायालय को यह सूचित किया गया था कि वह संगठन कौन सा था, या कैसे अपीलकर्ता का उस संगठन से संबंध था। उच्च न्यायालय ने यह भी नहीं बताया है कि क्या उसने प्रत्यर्थी नंबर 1 से कोई पूछताछ की थी कि वह संगठन कौन सा था और अपीलकर्ता किस तरह से

उससे संबंधित था। इसके अलावा, जैसा कि शपथ पत्र से पता चलता है, सरकार ने अपने स्तर पर इस मामले में निर्णय लिया था कि प्रतिकूल रिपोर्ट के कारण अपीलकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया जा सकता है और इस बात से उच्च न्यायालय को अवगत कराया था। इस निर्णय को उच्च न्यायालय ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया, केवल यह कहकर कि उसकी इसमें कोई भूमिका नहीं थी क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 नियुक्ति प्राधिकारी था।

9. जब रिट याचिका उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष आई, तो खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 18.9.2008 द्वारा उत्तरदाताओं को उस रिपोर्ट के समर्थन में सामग्री पेश करने के लिए कहा, जो पुलिस अधीक्षक जिला प्रकाशम द्वारा प्रस्तुत की गई थी। रिपोर्ट और सहायक सामग्री खण्डपीठ को सौंपी गई थी और उस पर गौर करने के बाद बेंच ने अपने फैसले के पैरा 19 में कहा कि 'पूर्ववर्ती सत्यापन रिपोर्ट से सामने आए आरोप प्रतिबंधित संगठन के साथ संपर्क/संबंध दिखाते हैं।' खंडपीठ ने इस न्यायालय के निर्णय के. अशोक रेड्डी बनाम भारत सरकार के निर्णय जो 1994 (2) एससीसी 303 में रिपोर्ट हुआ था, पर विश्वास किया। सरकार. कि उन मामलों में न्यायिक समीक्षा नहीं की जायेगी जहां राज्य विशेषाधिकार शक्ति का प्रयोग कर रहा था, और इसे वर्तमान मामले में लागू किया गया क्योंकि संबंधित उम्मीदवार की नियुक्ति न्यायाधीश के एक

संवेदनशील पद के लिए की जानी थी। डिवीजन बेंच ने भारत संघ बनाम काली दास बातिश जो 2006 (1) एससीसी मामले में इस न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख किया और उस पर भरोसा किया। काली दास बातिश ने 2006 (1) एससीसी 779 में इस आशय की रिपोर्ट दी कि जब नियुक्ति प्राधिकारी ने संबंधित उम्मीदवार को न्यायिक पद पर नियुक्त करना उचित नहीं पाया है, तो न्यायालय से उस निर्णय में हस्तक्षेप की उम्मीद नहीं की जाती है। इसलिए खण्डपीठ ने अपने अपेक्षित निर्णय और आदेश द्वारा रिट याचिका को खारिज कर दिया।

10. इस निर्णय से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील दायर की है। जब मामला इस न्यायालय के समक्ष पहुंचा, तो उत्तरदाताओं को उच्च न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट पेश करने के लिए बुलाया गया, जिस पर भरोसा किया गया था। कई स्थगनों के बाद, अंततः विशेष अधिकारी (प्रभारी) एमवी सुधा श्यामला के हलफनामे के साथ रिपोर्ट पेश की गई। पुलिस निरीक्षक, जिला विशेष शाखा, ओंगोल द्वारा दिनांक 15.9.2008 को 'सीपीआई (माओवादी) कार्यकर्ताओं और उनके समर्थकों की गतिविधियों पर रिपोर्ट' शीर्षक वाला एक दस्तावेज उस हलफनामे के साथ संलग्न किया गया था। इस रिपोर्ट के पैरा 5 में अपीलकर्ता के खिलाफ कुछ प्रतिकूल टिप्पणियाँ की गईं। यह पैरा 5 इस प्रकार है:-

"5. कसुकुर्थी विजयलक्ष्मी, एडवोकेट, मार्कपुर सीपीआई (माओवादी) फ्रंटल संगठन की सदस्य और सीपीआई (माओवादी) से सहानुभूति रखने वाली: - वह श्रीनिवासराव उर्फ श्रीनिवास चौधरी की पत्नी हैं। वह सीपीआई (माओवादी) पार्टी की समर्थक हैं। वह सीपीआई (माओवादी) के अग्रणी संगठन चैतन्य महिला समाख्या (सीएमएस) की सदस्य है। वह अन्य सदस्यों नागिरेड्डी भुलक्ष्मी @ राणा और चेरुकुरी वासंती, ओंगोल शहर के साथ प्रकाशम जिले में, विशेष रूप से मार्कापुरम क्षेत्र में सीएमएस की गतिविधियों को तीव्र करने की कोशिश कर रही हैं।" प्रथम प्रत्यर्थी, अर्थात श्री कोल्ली रघुराम रेड्डी की ओर से एक और हलफनामा दायर किया गया था, जिन्होंने इसके साथ पुलिस विभाग के कुछ दस्तावेज पेश किए थे, जिन्हें 'एपी पुलिस वाचकम' के नाम से जाना जाता है। हालाँकि, उन्होंने इस हलफनामे के पैरा 5 में स्वीकार किया कि:-

"एपी पुलिस वाचकम भाग III में उपरोक्त प्रकाशन को छोड़कर, इस बात का कोई विशेष दस्तावेजी प्रमाण नहीं है कि चैतन्य महिला समाख्या सीपीआई (माओवादी) का एक प्रमुख संगठन है।"

11. अपीलकर्ता ने जवाबी हलफनामा दायर किया और आरोपों से इनकार किया। उसने कहा कि वह सीपीआई (माओवादी) की सदस्य नहीं थी, न ही उसका प्रतिबंधित संगठन या उसके किसी नेता से कोई संबंध था। उन्होंने इस बात पर विवाद किया कि सीएमएस नाम से ऐसा कोई

संगठन अस्तित्व में है और किसी भी मामले में, वह ऐसे किसी संगठन की सदस्य नहीं थीं। उन्होंने कहा कि उनके पति इस पार्टी से जुड़े लोगों की कुछ जमानत अर्जियों में जरूर पेश हुए होंगे, लेकिन वह ऐसे किसी भी मामले में कभी पेश नहीं हुईं। उन्होंने आगे कहा कि उनके पति अधिवक्ताओं के एक पैनल के सदस्य थे, जिन्होंने राजनीतिक कैदियों का बचाव किया था, जिनके खिलाफ जिला पुलिस ने झूठे मामले लगाए थे, और वे मामले दोषमुक्ति में समाप्त हो गए थे। उन्होंने प्रतिकूल रिपोर्ट बनाने में पुलिस विभाग की प्रामाणिकता पर विवाद किया, और विभिन्न बार एसोसिएशनों द्वारा पारित प्रस्तावों पर भरोसा किया, जिसमें कहा गया था कि उनके पति को राजनीतिक गिरफ्तारी के मामलों में पुलिस का विरोध करने के लिए पीड़ित किया जा रहा था। हम इस स्तर पर ध्यान दे सकते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने इस अपील में कोई प्रतिवाद दायर नहीं किया है।

प्रतिद्वंद्वी पक्षों की दलीलें

12. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री रंजीत कुमार ने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाताओं ने समय-समय पर अपना रुख बदला है। प्रारंभ में, केवल इतना कहा गया था कि अपीलकर्ता के पति का सीपीआई (माओवादी) पार्टी के साथ घनिष्ठ संबंध था, जो एक प्रतिबंधित संगठन है। इसके बाद, यह आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता का भी उसी पार्टी से

संबंध था, और अंत में यह कहा गया कि वह सीएमएस की सदस्य थी, जिसे माओवादी फ्रंटल संगठन का नाम दिया गया था। विद्वान वकील ने प्रत्यर्थी से यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज़ पेश करने का कहा गया कि सीएमएस किसी भी तरह से सीपीआई (माओवादी) का फ्रंटल संगठन था, लेकिन हमारे सामने ऐसी कोई सामग्री पेश नहीं की गई है।

13. श्री रंजीत कुमार द्वारा इस न्यायालय के निर्णय (मध्यप्रदेश बनाम रमाशंकर रघुवंशी ने एआईऔर 1983 एससी 374 में रिपोर्ट की) का सहारा लिया गया। यह प्रत्यर्थी से संबंधित मामला था जो एक शिक्षक था। जो दिनांक 28-02-1972 को सरकारी स्कूल में समाहित हो गए लेकिन पुलिस उपाधीक्षक की प्रतिकूल रिपोर्ट के आधार पर उनकी सेवा 05.11.1974 को समाप्त कर दी गई। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 311 का उल्लंघन होने के कारण उस समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया। इस न्यायालय (प्रति ओ. चिनप्पा रेड्डी, जे.) ने उच्च न्यायालय के निर्णय को यथावत रखते हुए, संविधान में निहित भाषण, अभिव्यक्ति और संघ की स्वतंत्रता की अवधारणाओं को विस्तार से बताया। इसमें इसी मुद्दे पर कुछ प्रमुख अमेरिकी निर्णयों का उल्लेख किया गया है। न्यायालय ने कहा कि राजनीतिक दल 'जनसंघ' या और एसएस, जिसके साथ प्रत्यर्थी को जुड़ा हुआ माना जाता था, एक प्रतिबंधित संगठन नहीं था, न ही ऐसी कोई रिपोर्ट थी कि प्रत्यर्थी किसी हिंसक गतिविधि में

शामिल था। कोर्ट ने कहा कि अगर उम्मीदवार की सार्वजनिक रोजगार के लिए उपयुक्तता का पता लगाने के लिए किसी आपराधिक या विध्वंसक गतिविधि में शामिल होने के सवाल पर पुलिस रिपोर्ट मांगी जाती है तो यह बिल्कुल अलग मामला है। लेकिन अन्यथा, यह पैरा 3 में देखा गया: -

"...राजनीति कोई अपराध नहीं है". क्या इसका मतलब यह है कि केवल सत्ताधारी पार्टी के राजनीतिक आस्था में सच्चा विश्वास रखने वाले ही सार्वजनिक रोजगार के हकदार हैं?...... अधिकांश छात्रों और अधिकांश युवाओं को राष्ट्रीय नेताओं द्वारा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और यदि वे किसी न किसी रूप में आंदोलन में शामिल होते हैं, तो क्या यह उनकी हमेशा के लिए बदनामी होगी? कभी-कभी वे इसमें शामिल हो जाते हैं क्योंकि वे अन्याय के बारे में दृढ़ता से और बुरी तरह महसूस करते हैं, क्योंकि उनमें ईमानदारी होती है और क्योंकि वे आदर्शवाद से प्रेरित होते हैं। वे इसमें शामिल हो जाते हैं क्योंकि उन्हें बुजुर्ग नेताओं द्वारा सबसे आगे धकेल दिया जाता है जो नेतृत्व करते हैं और कभी-कभी उन्हें गुमराह भी करते हैं।

क्या इन सभी युवाओं को सार्वजनिक रोजगार से वंचित कर दिया जाना चाहिए? क्या सरकारी सेवा ऐसा स्वर्ग है कि केवल देवदूत ही इसमें प्रवेश चाहते हैं?" इसलिए इस न्यायालय ने यह माना कि किसी व्यक्ति को उसके राजनीतिक संबंधों के कारण रोजगार से वंचित करने का ऐसा कोई

भी दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा।

14. न्यायालय द्वारा अपने निर्णय के पैराग्राफ 7 में लर्नर बनाम केसी में डगलस, जे. की टिप्पणियों का उल्लेख किया। केसी जो निम्नलिखित प्रभाव वाली हैं: -

"7. लर्नर बनाम केसी में, (1958) 357 यूएस 468 डगलस, जे. ने कहा:

"हम यहां केवल विश्वास के मामले से निपटते हैं। हमारे पास किसी भी मामले में कोई सबूत नहीं है कि संबंधित कर्मचारी ने कभी कोई अपराध किया हो, कभी इस देश के विरूद्ध राष्ट्र विरोधी कदम उठाया हो। उनके विरूद्ध एकमात्र निशान -यदि इसे ऐसा कहा जा सकता है - कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता से संबंधित सवालों का जवाब देने से इनकार करना है। ऐसा कहा जाता है कि इससे बेइलन मामले में शिक्षक की योग्यता और लर्नर मामले में सबवे कंडक्टर की विश्वस्तता और विश्वसनीयता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है...

ऐसे क्षेत्र हैं जहां सरकार जांच नहीं कर सकती है। लेकिन सरकार का किसी नागरिक को केवल उसकी आस्था या संबंध के लिए दंडित करने का कोई काम नहीं है। यह सरकारी कार्रवाई है जो हमारे यहां है। यह सरकारी कार्रवाई है जिससे चौदहवें और प्रथम संशोधन बचाव करते हैं कई लोग

अपने सभी उद्देश्यों के पूर्ण समर्थन से कम के साथ संघों, समाजों और बिरादरी में शामिल होते हैं। इसके बाद, पैरा 9 में इस न्यायालय ने एक बार फिर स्पाइसर बनाम रान्डेल (1958) 357 यूएस 513 में न्यायधीश डगलस के बयान को उद्धृत किया। निम्नलिखित प्रभाव के लिए उद्वत किया

"9........वकालत जो किसी भी तरह से कार्रवाई से जुड़ी नहीं है, उसे हमेशा प्रथम संशोधन द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए। यह सुरक्षा उन विचारों तक भी विस्तारित होनी चाहिए जिनसे हम घृणा करते हैं..... ।"

अंततः इस न्यायालय ने उस याचिका को ख़ारिज कर दिया। इसके पैराग्राफ 10 में जो देखा गया, वह हमारे उद्देश्य के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है। यह पैरा इस प्रकार है:-

"10. हम एक क्षण के लिए भी यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि सरकारी सेवा में प्रवेश के बाद भी कोई व्यक्ति राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न रह सकता है। हम बस इतना ही कहते हैं कि उनकी पिछली राजनीतिक गतिविधियों के आधार पर उन्हें बिल्कुल दहलीज पर वापस नहीं लौटाया जा सकता है। एक बार जब वह सरकारी सेवक बन जाता है, तो वह अपने आचरण को विनियमित करने वाले विभिन्न नियमों के अधीन हो जाता है और उसकी गतिविधियाँ स्वाभाविक रूप से संविधान के अनुरूप बनाए गए सभी नियमों के अधीन होनी चाहिए।

15. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री वेंकटरामनी ने दूसरी और भारत संघ बनाम काली दास बातिश (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। जिस पर खण्डपीठ द्वारा विश्वास किया गया था। यह एक ऐसा मामला था जहां प्रथम प्रत्यर्थी केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण में न्यायिक सदस्य के पद के लिए उम्मीदवार था। इस न्यायालय के एक न्यायाधीश की अध्यक्षता में चयन समिति ने उन्हें विचारार्थ चुना था। जब इंटेलिजेंस ब्यूरो द्वारा उनके पूर्ववृत्त का सत्यापन किया गया, तो कार्मिक मंत्रालय के निदेशक (एटी)

द्वारा 25.10.2001 को निम्नलिखित आशय की एक टिप्पणी तैयार की गई: -

(i) कानूनी हलकों में, उन्हें औसत क्षमता का वकील माना जाता है।

(ii) यह पता चला है कि यद्यपि उन्हें न्यायमूर्ति और एल खुराना की अदालत में आवंटित किया गया था, लेकिन विद्वान न्यायाधीश उनके मामलों की प्रस्तुति से खुश नहीं थे और उन्होंने महाधिवक्ता से उन्हें किसी अन्य अदालत में स्थानांतरित करने के लिए कहा, जो किया गया।

(iii) वह 1982 और 1985 में भाजपा के टिकट पर शिमला एसी सीट के दावेदार थे। जब उन्हें टिकट नहीं मिला, तो उन्होंने पार्टी के खिलाफ काम किया और 1985 में उन्हें पार्टी से निष्कासित कर दिया

गया। बाद में उन्हें फिर से 1989 में पार्टी में शामिल कर लिया गया।" हालांकि, निदेशक ने उन्हें संदेह का लाभ दिया, क्योंकि उनके नाम की सिफारिश सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली चयन समिति ने की थी। कार्मिक मंत्रालय के संयुक्त सचिव ने भी इसी तरह की टिप्पणी की। हालाँकि, कार्मिक मंत्रालय के सचिव ने नोट किया कि उन्हें नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनका प्रदर्शन खराब था। राज्य मंत्री ने नोट किया कि विभागीय सिफारिशें भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) को भेजी जाएंगी। जब प्रस्ताव बाद में सीजेआई को गोपनीय ज्ञापन के साथ प्रस्तुत किया गया, तो उन्होंने कार्मिक मंत्रालय के सचिव द्वारा प्रस्तुत ज्ञापन से सहमति व्यक्त की और प्रथम प्रतिवादी का नाम हटा दिया गया।

16. इसी पृष्ठभूमि पर प्रथम प्रत्यर्थी काली दास बातिश (सुप्रा) ने हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय पहुॅचा, जिसने निर्देश दिया कि उनके मामले पर नए सिरे से विचार किया जाए। जब उस फैसले को चुनौती दी गई, तो इस न्यायालय ने उपर्युक्त सन्दर्भित तथ्यों पर ध्यान दिया, और माना कि जब उचित निर्णय लेने की प्रक्रिया का पालन किया गया था, और सीजेआई ने प्रथम प्रत्यर्थी की उम्मीदवारी को रद्द करने के लिए मंत्रालय की राय स्वीकार कर ली थी, तो कोई बात नहीं थी। उच्च न्यायालय के पास उस निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था।

प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985_के प्रावधानों के अनुसार इसकी धारा_6 (3) के तहत सीजेआई से परामर्श की आवश्यकता होती है । ऐसा किये जाने पर, और प्रथम प्रत्यर्थी को उपयुक्त नहीं पाये जाने पर, पुनर्विचार का कोई मामला नहीं था। श्री वेंकटरामनी ने इस बात पर बल देने का प्रयास किया कि राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी वह कारक थी जो उस मामले में प्रत्यर्थी नंबर 1 के विरूद्ध गई थी, और इसलिए यहां यह अपीलकर्ता के लिए भी है। हालाँकि, जैसा कि हम उस निर्णय से देख सकते हैं, राजनीतिक संबंध वह प्रासंगिक कारक नहीं था जो काली दास बातिश के विरूद्व गया। मुख्य रूप से, यह तथ्य है कि उनके बारे में यह बताया गया था कि वे एक औसत दर्जे के वकील थे, जिसके कारण उनकी उम्मीदवारी खारिज कर दी गई।

17.उत्तरदाताओं की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया कि उम्मीदवार का नाम मेरिट सूची में आ सकता है लेकिन उसे नियुक्ति का कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं है। इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय शंकरसन दाश बनाम भारत संघ ने 1991 में रिपोर्ट दी (3) एससीसी 47 पर आधारित/विश्वास रखा गया था। हालाँकि, हमें ध्यान देना चाहिए कि उपरोक्त प्रस्ताव देते समय, इस न्यायालय ने यह भी कहा है कि इस प्रस्ताव का मतलब यह नहीं है कि राज्य के पास मनमाने तरीके से कार्य करने का लाइसेंस है। इस निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 7 इस प्रकार है:-

"7. यह कहना सही नहीं है कि यदि नियुक्ति के लिए कई रिक्तियां अधिसूचित की जाती हैं और पर्याप्त संख्या में उम्मीदवार योग्य पाए जाते हैं, तो सफल उम्मीदवारों को नियुक्ति का एक अपरिहार्य अधिकार प्राप्त होता है जिसे वैध रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आम तौर पर अधिसूचना केवल योग्य उम्मीदवारों को भर्ती के लिए आवेदन करने के लिए निमंत्रण के समान होती है और उनके चयन पर उन्हें पद पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। जब तक प्रासंगिक भर्ती नियम ऐसा न बताएं, राज्य पर सभी या किसी भी रिक्तियों को भरने का कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि राज्य के पास मनमाने ढंग से कार्य करने का लाइसेंस है। रिक्तियों को न भरने का निर्णय उचित कारणों से लिया जाना चाहिए। और यदि रिक्तियां या उनमें से कोई भी भरा जाता है, तो राज्य उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता का सम्मान करने के लिए बाध्य है, जैसा कि भर्ती परीक्षा में दर्शाया गया है, और किसी भी भेदभाव की अनुमति नहीं दी जा सकती है.........।"

प्रतिद्वंद्वी की दलीलों पर विचार :

संविधान के अनुच्छेद 22(1) और अधिवक्ता अधिनियम **, 1961 के प्रावधानों के संदर्भ में एक अधिवक्ता के कर्तव्य :**

18. हमने पुलिस रिपोर्ट के आधार पर नियुक्ति से इनकार के मुद्दे पर विरोधी पक्षकारों की दलीलों पर गौर किया है। अपीलकर्ता ने सीपीआई

(माओवादी) पार्टी या सीएमएस के साथ किसी भी तरह के संबंध से इनकार किया है। हालाँकि, उन्होंने कहा है कि शायद उनके पति सीपीआई (माओवादी) पार्टी से जुड़े कुछ लोगों की जमानत अर्जी में उनके वकील के रूप में पेश हुए थे। प्रारंभ में, जैसा कि प्रथम उत्तरदाता के पत्र दिनांक 11.11.2008 में कहा गया था, अपीलकर्ता के खिलाफ प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट का आधार यह था कि उसके पति का सीपीआई (माओवादी) पार्टी के साथ घनिष्ठ संबंध है, जो एक प्रतिबंधित संगठन है। श्री रंजीत कुमार ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को उसके पति द्वारा किसी वादी के लिए पेश होने के कारण पीड़ित नहीं किया जा सकता है, और दूसरी बात उन्होंने पूछा: 'क्या किसी भी मामले में किसी व्यक्ति के लिए किसी जमानत आदेश की मांग करने के लिए उपस्थित होने के लिए उसके पति की आलोचना की जा सकती है? क्या यह सच है कि वह व्यक्ति सीपीआई (माओवादी) पार्टी का है?' एक वकील के रूप में, वह केवल उन वादियों के लिए अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे जिन्होंने उनसे सहायता मांगी थी।

19. हम इस प्रस्तुतिकरण के गुणावगुण को भली-भांति समझते हैं। जो लोग राजनीति में भाग ले रहे हैं और सत्ता में बैठे लोगों के विरोधी हैं, उन्हें अक्सर शासकों के क्रोध का शिकार होना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप कभी-कभी अनुचित गिरफ्तारी या हिरासत हो सकती है। लोकतंत्र की श्रेष्ठता प्रत्येक गिरफ्तार या हिरासत में लिए गए व्यक्ति के

अपनी पसंद के विधि व्यवसायी द्वारा बचाव के अधिकार को मान्यता देने में निहित है। हमारे संविधान का अनुच्छेद 22(1) विशेष रूप से निम्नलिखित को मौलिक अधिकार के रूप में बताता है: -

"22. **कुछ दशा में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण-**(1) गिरफ्तार किए गए किसी भी व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के आधार के बारे में यथाशीघ्र सूचित किए बिना हिरासत में नहीं रखा जाएगा , न ही उसे परामर्श लेने के अधिकार से वंचित किया जाएगा, और अपनी पसंद के विधि व्यवसायी द्वारा बचाव किया जाना।"

(प्रमुखतः उपलब्ध कराया गया)

ऐसे सभी आरोपियों को तब तक कानूनी रूप से बचाव करने का अधिकार है जब तक कि वे दोषी साबित न हो जाएं, और अधिवक्ताओं का कानून के अनुसार उनका प्रतिनिधित्व करने का कर्तव्य है। वर्तमान मामले के तथ्यों में कोई भी विपरीत दृष्टिकोण अपनाने से अपीलकर्ता को अपने पति की भूमिका के लिए पीड़ित होना पड़ेगा जो गिरफ्तार व्यक्तियों के इस मौलिक अधिकार को आगे बढ़ाने में एक वकील के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा है। हम इस बात को नजरअंदाज नहीं कर सकते कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान और स्वतंत्रता के बाद भी, कई प्रमुख वकीलों ने गिरफ्तार या हिरासत में लिए गए राजनीतिक और नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण कानूनी सेवाएँ दीं। स्वतंत्रता के बाद के युग

में हम इस संबंध में स्वर्गीय सर्वश्री एमके के बहुमूल्य योगदान का उल्लेख नांबियार, (न्यायमूर्ति) वीएम तारकुंडे, और केजी कन्नाबिरन (आंध्र प्रदेश से ही) करते हुए कुछ प्रतिष्ठित वकीलों के नाम हैं, जिन्होंने ऐसे गिरफ्तार या हिरासत में लिए गए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करके इस कर्तव्य का निर्वहन किया, भले ही वे प्रतिबंधित संगठनों से जुड़े हों।

20. हम, इस स्तर पर, ध्यान दे सकते हैं कि बार काउंसिल ऑफ इंडिया, जो अधिवक्ताओं का एक नियामक निकाय है, ने अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 49 के तहत नियम बनाए हैं। इसके भाग-VI का अध्याय-II बताता है व्यावसायिक आचरण और शिष्टाचार के मानक। धारा-I, जिसमें नियम 1 से 10 शामिल हैं, अदालत के प्रति अधिवक्ताओं के कर्तव्यों को निर्धारित करता है, जबकि धारा-II ग्राहक के प्रति कर्तव्यों को निर्धारित करता है। इस धारा के नियम 11 और 15 हमारे लिए प्रासंगिक हैं। ये दोनों नियम इस प्रकार हैं:-

"11. एक वकील अदालतों या न्यायाधिकरणों में या किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष किसी भी ब्रीफ/वकालतनामा को स्वीकार करने के लिए बाध्य है, जिसमें वह बार में अपनी स्थिति और मामले की प्रकृति के अनुरूप शुल्क पर अभ्यास करने का प्रस्ताव करता है। विशेष परिस्थितियाँ किसी विशेष ब्रीफ/वकालतनामा को स्वीकार करने से उसके इनकार को उचित ठहरा सकती हैं।

15. एक वकील का यह कर्तव्य होगा कि वह स्वयं या किसी अन्य के लिए किसी भी अप्रिय परिणाम की परवाह किए बिना सभी निष्पक्ष और सम्मानजनक तरीकों से अपने मुवक्किल के हितों की निडर होकर पैरवी करेगा। । वह किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति का बचाव करेगा, भले ही आरोपी के अपराध के बारे में उसकी व्यक्तिगत राय कुछ भी हो, यह ध्यान में रखते हुए कि उसकी वफादारी कानून के प्रति है जिसके लिए आवश्यक है कि किसी भी व्यक्ति को पर्याप्त सबूत के बिना दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए।"

2011 (1) एससीसी 688 में रिपोर्ट एएस मोहम्मद रफ़ी बनाम तमिलनाडु राज्य में यह न्यायालय आपराधिक मामलों में आरोपी पुलिसकर्मियों का बचाव नहीं करने के लिए बार एसोसिएशन द्वारा पारित प्रस्ताव से चिंतित था। इस न्यायालय ने अपने शब्दों में कहा कि ऐसे संकल्प आरोपी के बचाव के अधिकार का उल्लंघन करते हैं, जिसे संविधान के अनुच्छेद 22(1) के तहत विशेष रूप से मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है, और ऐसे संकल्प शून्य और शून्य हैं।

संविधान के अनुच्छेद 23 **4 और न्यायिक सेवा नियमों के तहत न्यायिक अधिकारी की नियुक्ति के लिए आवश्यकताएँ:**

21. इस अपील में, हम इस सवाल से चिंतित हैं कि क्या प्रथम प्रतिवादी/उत्तरदाता (आंध्र प्रदेश सरकार) और द्वितीय प्रतिवादी (उच्च

न्यायालय) ने अपीलकर्ता की नियुक्ति के मामले में सही ढंग से आगे बढ़ाया है। इस संबंध में हमें संविधान के अनुच्छेद 234 का उल्लेख करना चाहिए, जो न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की भर्ती के मामले में शासकीय अनुच्छेद है। यह लेख इस प्रकार है:-

"234. न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की भर्ती - किसी राज्य की न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य के परामर्श के बाद उसके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाएगी। लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय ऐसे राज्य के संबंध में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हैं।

22. वर्तमान मामले में, सिविल न्यायाधीशों के पदों पर नियुक्तियाँ आंध्रप्रदेश राज्य न्यायिक सेवा नियम, 2007 द्वारा शासित होती हैं, जो संविधान के अनुच्छेद 233, 234, 235, 237 अनुच्छेद 309 के परंतुक और अनुच्छेद 320(3) के परंतुक के तहत बनाई गई हैं । इन नियमों के नियम 4 (1) में घोषणा की गई है कि राज्य के राज्यपाल जिला न्यायाधीशों और सिविल न्यायाधीशों की श्रेणियों के लिए नियुक्ति प्राधिकारी होंगे। नियम 4 (2) (डी) में कहा गया है कि सिविल न्यायाधीशों की श्रेणी में नियुक्तियाँ उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित लिखित और मौखिक परीक्षा के आधार पर पात्र अधिवक्ताओं में से सीधी भर्ती द्वारा की जाएंगी।

तदनुसार, वर्तमान मामले में एक विज्ञापन जारी किया गया और लिखित और मौखिक परीक्षा आयोजित की गई। अपीलकर्ता इसके लिए उपस्थित हुआ और दोनों परीक्षणों में सफल घोषित किया गया। इसके बाद उसका नाम चयन सूची में आ गया। इसी चरण में इंटेलिजेंस ब्यूरो द्वारा जांच की गई, जिसने उनके बारे में प्रतिकूल रिपोर्ट दी। रिट याचिका की सुनवाई के दौरान दायर रजिस्ट्रार जनरल के हलफनामे से हमें यह नहीं पता चला कि पुलिस जांच के सभी प्रासंगिक कागजात प्रशासनिक पक्ष से उच्च न्यायालय को सौंपे गए थे। अब सवाल उठता है अर्थात क्या प्रतिवादी/उत्तरदाता नंबर 1 के लिए स्वयं निर्णय लेना उचित था कि उस रिपोर्ट के पूर्वाग्रह के आधार पर अपीलकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया जा सकता है? पुलिस रिपोर्ट दिनांक 15.9.2008 को खण्डपीठ के समक्ष तभी प्रस्तुत किया गया था जब प्रतिवादी नंबर 1 को अपीलकर्ता के खिलाफ विश्वसनीय सामग्री पेश करने के लिए बुलाया गया था। और यदि रिपोर्ट प्रतिकूल थी, तो क्या उत्तरदाता संख्या 1 से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह प्रशासनिक पक्ष से उन सभी प्रासंगिक कागजात को विचार के लिए उच्च न्यायालय को अग्रेषित करेगा? काली दास बातिश (सुप्रा) के मामले में यही किया गया था, जिसमें उत्तरदाता नंबर 1 का नाम चयन सूची में शामिल करने के बाद एक प्रतिकूल रिपोर्ट प्राप्त हुई थी, और रिपोर्ट सीजेआई को भेज दी गई थी। वर्तमान मामले में यह रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया है कि ऐसे सभी कागजात प्रशासनिक पक्ष से उच्च न्यायालय को

उसके निर्णय को सुविधाजनक बनाने के लिए भेज दिए गए थे। दूसरी ओर सरकार ने स्वयं निर्णय लिया था कि प्रतिकूल रिपोर्टों के मद्देनजर अपीलकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता को नियुक्त न करने के निर्णय पर पहुंचने से पहले उच्च न्यायालय के साथ सार्थक परामर्श किया गया है। अनुच्छेद 234 विशेष रूप से आवश्यक है कि ये नियुक्तियाँ राज्य लोक सेवा आयोग और संबंधित राज्य में अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद की जाएं। उच्च न्यायालय प्रतिकूल रिपोर्ट को स्वीकार भी कर सकता है और नहीं भी। अंततः, जहां तक चयन न्यायिक पद पर नियुक्ति के लिए है, राज्यपाल को उच्च न्यायालय की राय से निर्देशित होना होगा। वर्तमान मामले में, जैसा कि रिट याचिका के जवाब में रजिस्ट्रार-जनरल के हलफनामे से पता चलता है, गृह विभाग के पत्र के मद्देनजर, उच्च न्यायालय ने अपने हाथ खड़े कर दिए हैं, और उससे कोई और जानकारी नहीं मांगी है। प्रथम प्रत्यर्थी अनुच्छेद 234 के तहत यह सरकार का कर्तव्य है कि वह ऐसी रिपोर्टों को उच्च न्यायालय को अग्रेषित करे, और फिर उच्च न्यायालय को अपनी राय बनानी है, जिसके परिणामस्वरूप संबंधित उम्मीदवार को नियुक्त करने या न करने का परिणामी निर्णय होगा। इस अनुच्छेद के तहत सार्थक परामर्श के लिए ऐसी प्रक्रिया आवश्यक है। किसी भी अन्य दृष्टिकोण का मतलब यह होगा कि

पुलिस द्वारा जो भी कहा गया है वह अंतिम होगा, प्रशासनिक पक्ष में उच्च न्यायालय द्वारा उस पर विचार किए बिना।

23. (एआईऔर 1974 एससी 2192) शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ एक ऐसे मामले से चिंतित थी जहां पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने एक न्यायिक अधिकारी के विरूद्ध जांच करने का काम पंजाब सरकार के सतर्कता विभाग को सौंप दिया था। इस न्यायालय द्वारा इसे 'आत्म-बलिदान' का कृत्य बताया, इस फैसले का पैरा 78 इस प्रकार है:-

"78. उच्च न्यायालय ने उन कारणों से, जो नहीं बताए गए हैं, सरकार से जांच करने के लिए सतर्कता निदेशक को नियुक्त करनेका अनुरोध किया। यह वास्तव में अजीब है कि जिस उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण था, उसने सरकार से सतर्कता विभाग के माध्यम से जांच कराने को कहा। अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य न केवल उच्च न्यायालय के नियंत्रण में होते हैं बल्कि उच्च न्यायालय की देखरेख और संरक्षण में भी होते हैं। उच्च न्यायालय अपना नियंत्रण बनाए रखने के कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा। उच्च न्यायालय द्वारा सतर्कता निदेशक के माध्यम से जांच कराने का अनुरोध आत्म-त्याग का कार्य था। राज्य का यह तर्क कि उच्च न्यायालय चाहता था कि सरकार संतुष्ट हो, मामले को और भी बदतर बना देता है। राज्यपाल उच्च न्यायालय की

सिफारिश पर कार्य करेंगे। यह अनुच्छेद 235 का व्यापक आधार है। उच्च न्यायालय को अधिमानतः जिला न्यायाधीशों के माध्यम से जांच करानी चाहिए थी। अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य न केवल अनुशासन के लिए बल्कि गरिमा के लिए भी उच्च न्यायालय की ओर देखते हैं। उच्च न्यायालय ने सरकार को सतर्कता निदेशक के माध्यम से जांच करने के लिए कहकर अनुच्छेद 235 की पूरी तरह से अवहेलना की।

24. एआईऔर 2000 एससी 1296 में रिपोर्ट किए गए बिहार राज्य बनाम बाल मुकुंद साह में बताया, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ इस मुद्दे से संबंधित थी कि उच्च न्यायालय से अनुच्छेद 233 से 235 के बावजूद भी बिना परामर्श के अनुच्छेद 309 के तहत नियम बनाकर जिला और अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए भर्ती प्रक्रिया निर्धारित करना स्वीकार्य था। इस न्यायालय ने संविधान के सुसंगत अनुच्छेदों की योजना और इस संबंध में बिहार सरकार द्वारा बनाए गए नियमों की जांच की। इस निर्णय का पैराग्राफ 20 हमारे उद्देश्य के लिए सुसंगत है, और जो इस प्रकार है:-

"20. संविधान का भाग VI राज्यों से संबंधित अध्याय II पृथक से कार्यपालिका से संबंधित है, अध्याय III के तहत राज्य विधानमंडल और उसके बाद अध्याय IV राज्यपाल की विधायी शक्तियों से संबंधित है और उसके बाद अध्याय V राज्यों में उच्च न्यायालयों से संबंधित है और अध्याय VI अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित है। अधीनस्थ न्यायालयों

से संबंधित अध्याय VI में हम अनुच्छेद 233 के तहत जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, अनुच्छेद 234 के तहत न्यायिक सेवाओं में जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की भर्ती और अनुच्छेद 235 के अनुसार अधिनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण भी अनुच्छेद 236'व्याख्या' के विषय से संबंधित है और अन्य बातों के अलावा, बी द्वारा से उप-अनुच्छेद परिभाषित करता है। "न्यायिक सेवा" को अभिव्यक्त किया गया है जिसका अर्थ है "एक सेवा जिसमें विशेष रूप से जिला न्यायाधीश के पद और जिला न्यायाधीश के पद से निचले अन्य सिविल न्यायिक पदों को भरने के आशय से सम्मिलित व्यक्ति शामिल हैं।" इसलिए, यह स्पष्ट हो जाता है कि, संविधान निर्माताओं ने राज्य की 'न्यायिक सेवाओं' को पृथक से और जिला न्यायाधीशों के पदों और जिला न्यायाधीश के पदों से निचले स्तर के अन्य सिविल न्यायिक पदों पर भर्ती के संबंध में विशेष प्रावधान किए। इस प्रकार से प्रावधान संविधान के एक अलग हिस्से में पाए गए हैं और अपने स्वयं पर ही निर्भर है। 'राज्य' के तहत सामान्य रूप से सेवाओं से संबंधित भाग XIV से काफी स्वतंत्र हैं। इसलिए, अनुच्छेद 309 , जो अपनी स्पष्ट शर्तों पर, संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन बनाया गया है, इसके संचालन के सामान्य क्षेत्र की सीमा तक सीमित रहता है। संविधान के भाग VI के अध्याय VI में

पाए गए अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित अनुच्छेदों के सुसंगत प्रावधानों के द्वारा एक पृथक और विशेष क्षेत्र तैयार किया गया है।

25. ये निर्णय स्पष्ट रूप से उन सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हैं जो अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संविधान के अनुच्छेद 233 से 235 की व्याख्या और भूमिका का मार्गदर्शन करते हैं। अनुच्छेद 234 में न्यायिक सेवा में भर्ती के मामले में उच्च न्यायालय के साथ सार्थक परामर्श की आवश्यकता है। अनुच्छेद 234 के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय को प्रशासनिक दृष्टि में एक उम्मीदवार की उपयुक्तता पर निर्णय लेना है, और यह केवल पुलिस रिपोर्टों पर निर्भर नहीं हो सकता है, हालांकि ऐसी रिपोर्टें, निश्चित रूप से, इसके विचार का एक प्रासंगिक हिस्सा बनेंगी। जैसा कि रमाशंकर रघुवंशी (उपर बताए गए) के पैराग्राफ 3 में कहा गया है कि केवल उम्मीदवार की राजनीतिक संबंध की पुलिस रिपोर्ट के आधार पर किसी उम्मीदवार को सार्वजनिक रोजगार से वंचित करना, संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा, जब तक कि ऐसे संबंध उम्मीदवार की निष्ठा और दक्षता को प्रभावित करने वाली नहीं मानी जाती हैं, या (हम जोड़ सकते हैं) जब तक कि किसी प्रतिबंधित संगठन की विध्वंसक या हिंसक गतिविधियों में उम्मीदवार की संलिप्तता का संकेत देने वाली स्पष्ट सामग्री न हो। वर्तमान मामले में यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है कि अपीलार्थी किसी विध्वंसक या हिंसक गतिविधियों में शामिल रहा है। अपीलकर्ता ने सीपीआई (माओवादी) पार्टी या सीएमएस के साथ अपने कथित संबंध से इनकार किया है। प्रतिवादी नंबर 1 ने स्वीकार किया है कि

इस बात का कोई दस्तावेजी सबूत नहीं है कि सीएमएस सीपीआई (माओवादी) का फ्रंटल संगठन है। और जहां तक उसके सीपीआई (माओवादी) से संबंध का प्रश्न है, पुलिस की रिपोर्ट के अलावा कोई सामग्री नहीं है, जिसकी प्रमाणिकता को अपीलार्थी द्वारा विवादित किया गया है। इसके अलावा, चूंकि रिपोर्ट न तो उच्च न्यायालय को सौंपी गई और न ही मांगी गई, इसलिए उच्च न्यायालय प्रशासन द्वारा उस पर कोई विचार नहीं किया गया है। इस प्रकार, सरकार के पास जो सामग्री उपलब्ध थी, उस पर उच्च न्यायालय के साथ कोई सार्थक परामर्श नहीं हुआ है। इस प्रकार उच्च न्यायालय प्रशासन संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने में विफल रहा है।

26. खण्डपीठ ने न्यायिक पुनर्विलोकन को खारिज करने के लिए विशेषाधिकार शक्ति का सिद्धांत के. अशोक रेड्डी (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों पर निर्भर करके लिए । उस मामले में याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के संबंध में यह घोषणा करने की मांग की थी कि वे स्थानांतरण के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। उनका एक तर्क यह था कि ऐसे स्थानांतरणों के मामले में न्यायिक पुनर्विलोकन का अभाव है और यह विधि में भी गलत है। जैसा कि के. अशोक रेड्डी (सुप्रा) मामले में आक्षेपित निर्णय में उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय ने काउंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियन बनाम सिविल सेवा मंत्री के

मामले में 1984 (3) सभी ईऔर 935 में रिपोर्ट की गई लॉर्ड रोस्किल की टिप्पणियों का उल्लेख किया कि विशेषाधिकार शक्ति के प्रयोग की कई स्थितियाँ न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए अतिसंवेदनशील नहीं हैं, क्योंकि विषय वस्तु की प्रकृति जैसे कि संधियाँ करना, क्षेत्र की रक्षा करना और संसद को भंग करना कुछ का उल्लेख है। यह कहते हुए कि, जहां तक न्यायाधीशों के स्थानांतरण का सवाल है, इस न्यायालय ने माना है कि न्यायिक पुनर्विलोकन पूर्ण रूप सें अपवर्जित नहीं था, बल्कि (1993) 4 एससीसी 441 में सुप्रीम कोर्ट ए.आ और संगठन बनाम भारत संघ के फैसले से केवल न्यायसंगतता का क्षेत्र कम किया गया था। इसलिए के. अशोक रेड्डी (उपर बताए गए) की टिप्पणियों पर निर्भरता पूरी तरह से गलत थी। इसके अलावा, सिविल जज के पद पर नियुक्ति अनुच्छेद 234 और राज्य न्यायिक सेवा नियमों के तहत आती है, और यदि इसका कोई उल्लंघन या अतिलंघन होता है, तो ऐसे निर्णय की न्यायिक समीक्षा निश्चित रूप से हो सकती है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह मानने में स्पष्ट रूप से गलती की कि सिविल जज की नियुक्ति से संबंधित निर्णय की न्यायिक समीक्षा की अनुमति नहीं थी क्योंकि वह पद एक संवेदनशील पद था।

इसलिए, निष्कर्ष:

27. यहां हम इस सवाल से संबंध रखते हैं कि क्या अपीलकर्ता को उसकी कथित राजनीतिक गतिविधियों के आधार पर, बिल्कुल प्रारंभ से ही वापस भेजा जा सकता है। उसने इस बात से इनकार किया है कि वह किसी भी तरह से सीपीआई (माओवादी) या सीएमएस से जुड़ी हुई है। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है कि यह सीएमएस एक प्रतिबंधित संगठन है या अपीलकर्ता इसका सदस्य है। यह भी रिकॉर्ड में नहीं रखा गया है कि उसने किस तरह से उनकी किसी गतिविधि में भाग लिया था, और किस कार्यक्रम के माध्यम से उसने मार्कापुरम क्षेत्र में सीएमएस की गतिविधियों को तेज करने की कोशिश की थी, जैसा कि ऊपर उद्धृत रिपोर्ट के पैराग्राफ 5 में दावा किया गया है। यह स्वीकार करते हुए कि उनके पति सीपीआई (माओवादी) के कुछ कार्यकर्ताओं के लिए जमानत लेने के लिए पेश हुए होंगे, अपीलकर्ता ने आरोप लगाया है कि उनके पति आपराधिक मामलों में पुलिस का विरोध करने के कारण पुलिस उन्हें फंसाने की कोशिश कर रही है। प्रथम दृष्टया, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर, यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि अपीलकर्ता के किसी प्रतिबंधित संगठन के साथ संबंध थे। इसलिए विवादित फैसले के पैरा 19 में दिए गए खण्डपीठ के निष्कर्ष को यथावत नहीं रखा जा सकता है।

28. हम इस स्तर पर यह भी नोट कर सकते हैं कि चयन पर, सिविल न्यायाधीश दो साल की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहते हैं, और

जिला न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के पास उनके प्रदर्शन को देखने का पर्याप्त अवसर होता है। यदि आवश्यक हो तो उनकी परिवीक्षा को बढ़ाया जा सकता है, और यदि अनुपयुक्त पाया जाता है या कार्यालय के अनुरूप गतिविधियों में संलग्न नहीं पाया जाता है, तो उम्मीदवारों को निष्कासित किया जा सकता है। आंध्र प्रदेश राज्य न्यायिक सेवा के प्रासंगिक नियम नियम संख्या 9, 10 और 11 इस प्रकार हैं: -

“9. परिवीक्षा और पदाधिकार :

प्रत्येक व्यक्ति जो सीधी भर्ती द्वारा जिला न्यायाधीशों की श्रेणी में नियुक्त किया जाता है, जिस तिथि से वह सेवा में शामिल होता है, दो साल की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहेगा।

प्रत्येक व्यक्ति जो सीधी भर्ती के अलावा जिला न्यायाधीशों की श्रेणी में नियुक्त किया जाता है, दो वर्ष की अवधि के लिए पद पर रहेगा।

सिविल न्यायाधीशों की श्रेणी में नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति दो वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहेगा।

परिवीक्षा या स्थानापन्न की अवधि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी अवधि तक बढ़ाई जा सकती है, जो परिवीक्षा या स्थानापन्न की अवधि से अधिक नहीं होगी, जैसा भी मामला हो, जैसा कि यहां ऊपर खंड (ए) से (सी) में निर्दिष्ट है।

10. पुष्टिकरण/नियमितीकरण: जिस व्यक्ति को परिवीक्षा या स्थानापन्न की अपनी अवधि, जैसा भी मामला हो, संतोषजनक ढंग से पूरा करने के लिए घोषित किया गया है, उसे उस पद की श्रेणी में सेवा के पूर्ण सदस्य के रूप में पुष्टि की जाएगी जिस पर उसे नियुक्त या पदोन्नत किया गया था।, वास्तविक रिक्ति के विपरीत जो मौजूद हो सकती है या उत्पन्न हो सकती है।

11. अनुपयुक्त परिवीक्षाधीन व्यक्तियों को बर्खास्त करना: यदि परिवीक्षा अवधि या विस्तारित परिवीक्षा अवधि के अंत में, उच्च न्यायालय की सिफारिश पर नियुक्ति प्राधिकारी यह मानता है कि परिवीक्षाधीन व्यक्ति उस पद के लिए उपयुक्त नहीं है जिस पर उसे नियुक्त किया गया है, आदेश द्वारा उसे एक महीने का नोटिस या उसके बदले में एक महीने का वेतन देने के बाद सेवा से मुक्त किया जा सकता है।

29. इस संवैधानिक और कानूनी ढांचे के मद्देनजर, हमारा स्पष्ट मानना है कि उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 234 के तहत अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने में पहले प्रशासनिक पक्ष में गलती की है, और फिर रिट याचिका को खारिज करने में न्यायिक पक्ष में गलती की है। अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत काली दास बातिश (सुप्रा) के मामले के फैसले से गलत निष्कर्ष निकालकर अदालत अपीलकर्ता द्वारा उसके पक्ष में नियुक्ति आदेश जारी करने के लिए मांगे गए परमादेश को स्वीकार नहीं कर

सकती। जैसा कि 1993 (3) एससीसी 552 में रिपोर्ट किए गए हरपाल सिंह चौहान बनाम यूपी राज्य के पैरा 17 में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है। न्यायालय यह जांच कर सकती है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई कमजोरी थी या नहीं। हालाँकि, चयन के संबंध में अंतिम निर्णय उचित प्राधिकारी पर छोड़ा जाना है। मौजूदा मामले में खण्डपीठ को राज्य सरकार को निर्देश देना चाहिए कि प्रशासनिक पक्ष की ओर से सभी पुलिस कागजातों को उच्च न्यायालय के समक्ष रखे, ताकि उस पर उचित विचार-विमर्श के बाद उचित निर्णय लिया जा सके।

30. तदनुसार, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांकित 19.3.2009 को अपास्त किया जाता है। प्रथम प्रत्यर्थी राज्य सरकार को प्रशासनिक स्तर पर उच्च न्यायालय के विचार के लिए पुलिस रिपोर्ट (खण्डपीठ के समक्ष प्रस्तुत) रखने का निर्देश दिया जाता है। प्रथम प्रत्यर्थी को इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने के दो सप्ताह के भीतर ऐसा करना चाहिए। इसके बाद चार सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय की चयन समिति इस पुलिस रिपोर्ट और अपीलकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण सहित सभी प्रासंगिक सामग्री पर विचार करेगी और अपीलकर्ता की नियुक्ति के संबंध में उचित निर्णय लेगी, और उसे प्रत्यर्थी संख्या 1 को अग्रेषित करेगी। प्रथम प्रत्यर्थी उच्च न्यायालय से सूचना प्राप्त होने के दो सप्ताह के भीतर परिणामी आदेश जारी करेगा। यह अपील और

अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका संख्या 26147/2008 इस आदेश के साथ निस्तारित हो जाएगी। इस मामले के तथ्यों में, हम खर्चे के संबंध में कोई भी आदेश पारित करने से विरत रहते हैं।

अपील निस्तारित।

यह अनुवाद और आर्टीफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी राजीव चौधरी (और.जे.एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्घेश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्घेश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्घेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।